दो शब्द

संसार की तृष्णा रूपी ज्वालाओं से परिपूर्ण
भट्टी में भड़-भड़ जलते हुए देख जिन्होंने
परमानुकम्पा से मुझे हस्तावलम्बन
देकर उससे अस्पर्श निकाल लिया
है, तथा जो धर्म के रहस्य को
जीवन में धारण कर आलौकिक
प्रभावना में रत हैं तथा
जिनकी अपूर्व वाणी इस
मुख व लेखनी को यंत्र
बनाकर निसृत हो
रही है, उन परम
पूज्य गुरुदेव के
चरणों में
शत्-शत्
वन्दन्

●

प्रथम बार २०००

१. विश्व का आधार 'धर्म'

आज का मानव धर्म का आश्रय छोड़कर, ऋषियों की करुण पुकार की अवहेलना करके भौतिक-विज्ञान के आधार पर अपने को उन्नत मानकर इतरा रहा है। वह विज्ञान जोकि मुंह फाड़े सर्वसृष्टि को तथा अपने को भी निगल जाने को तैय्यार बैठा है। मानव जीवन मृत्यु के झूले में झूल रहा है। जिस विज्ञान ने आज मानव की आंखों को चौंधिया रखा है कल वह प्रलय का कारण बनने वाला है। यदि धर्म व धर्मगुरुओं को इसी प्रकार ठुकराया जाता रहा तो अवश्य गोदामों में बन्द हाईड्रोजन बम फटेंगे और सृष्टि भूगर्भ में समा जाएगी वर्तमान की सर्व भौतिक उन्नति स्वप्न बनकर रह जाएगी।

अरे भगवन! तू क्यों निराश होता है प्रकृति का यही नियम है तथा ऋषियों के हृदय की आवाज रूपी भारत की प्राचीन श्रुति भी यही है कि जब-जब पाप से पृथिवी का भार बढ़ जाया करता है, जब जब मानव में स्वार्थ नृत्य करने लगता है, जब-जब मानव हृदय विहीन हुआ अपने को ईश्वर समझने लगता है, जब-जब पृथिवी पर अन्याय बढ़ जाया करता है,—तब-तब स्वार्थ व विनाश का रूप धारण करके आसुरी शक्तियां सब ओर से इसपर आक्रमण किया ही करती है, तथा विद्वेष व वैमनस्य की ज्वालायें इस सृष्टि को भस्म करके इसका भार हल्का कर दिया करती हैं। प्राचीन काल में यही शक्तियां महाभारत काल में भी उत्पन्न हुई थीं तथा आज भी पुनः उसी प्रलय के आने के लक्षण प्रगट हो रहे हैं। "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः"—जब विनाश का समय आता है, तब बुद्धि विपरीत हो जाया करती है। तब सहि

को हित, अधर्म को धर्म मानने लगता है। जब बुद्धि ही विपरीत हो गई तब कौन समझाये ?

आज धर्म का लोप हो जाने पर भी अभी तक इस पृथिवी पर प्रलय नहीं हो पाई है उसका कारण भी यही है कि अभी धर्म कुछ शेष है, अभी अधम का प्याला पूरा भरा नहीं है। अभी धर्म का सर्वथा लोप नहीं हुआ है। यद्यपि मांसाहार के रूप में बूचड़खानों में हिंसा का प्रचार हो रहा है, परन्तु अभी तक इतना विवेक शेष है कि मानव के गले पर छुरी डालते समय हृदय कांपता है तथा उसके लिये दण्ड विधान भी निर्धारित हैं। यद्यपि न्यायशालाओं में सत्य के नाम पर घूस लेकर न्यायका गला घोटा जा रहा है परन्तु अभी अन्तःकरण काँपता है तथा मुँह भी असत्य की निन्दा करता है। यद्यपि घूस व ब्लैक मार्केट के रूप में चोरी नृत्य कर रही है परन्तु दूसरे के हाथ पर रक्खी वस्तु को हठात् उठाते हृदय थर्राता है तथा आंखें चारों तरफ देखती हैं। यद्यपि सिनेमा, टैलीविज़न, क्लब, रंगमञ्चों पर नृत्य के रूप में, फैशन व क्लबों में विलासिता के रूपमें अब्रह्म या व्याभिचार वृद्धिगत हो रहा है, परन्तु अभी तक किसी की बहू बेटी को छिपकर ही देखते हैं अर्थात छिपने की प्रवृत्ति बराबर बनी रहती है। यद्यपि संग्रह के रूपमें परिग्रहवाद विस्तृत हो रहा है परन्तु अभी स्वार्थवश, लज्जावश, भयवश अथवा धर्म के नाम पर भी कुछ दान दे दिया जाता है।

यद्यपि इस प्रकार अहिंसा के स्थान पर हिंसा, अचौर्य के स्थान पर घूस व ब्लैक, ब्रह्मचर्य के स्थान पर व्याभिचार और परिग्रह—त्याग के स्थान पर संग्रह का प्रचार हो रहा है। इसके अतिरिक्त मैत्री के स्थान पर ठगी, प्रेम के स्थान पर द्वेष, कर्तव्य-परायणता के स्थान पर कर्तव्यहीनता, क्षमा के स्थान पर क्रोध, मृदुता के स्थान पर अभिमान, सरलता के स्थान पर मायाचारी

छल-कपट आदि ने मानव को दूषित बना दिया है। परन्तु इन सबे पापों को किसी अन्य रूप में तथा छिपे-छिपे करते हैं। मानव अपने को अपराधी कहलाना अभी गवारा नहीं करता। अर्थात् दोष करते हुए भी मानव दोषी कहलाना नहीं चाहता। तात्पर्य यह है कि धर्म मरणसन्न हो चुका है परन्तु सौभाग्य है कि अभी निष्प्राण नहीं हुआ अर्थात जीवित है।

जिस दिन धर्म प्राण विहीन हो जायेगा अर्थात् अधर्म का प्याला जब पूर्ण भर जाएगा, जब बलवान निर्बल को मारकर अपनी क्षुधा शान्त करेगा, जब ये पाप निर्गल रूप से किये जाने लगेंगे, जब अधर्म का प्याला छिलकने लगेगा, बताईये ! उस दिन मानव कैसे प्राण धारण कर सकेगा। तब निर्बल राज्य को सबल राज्य हड़प कर लेंगे। तब हाइड्रोजन बम बहार निकलेगें और साक्षात् प्रयोग में आयेंगे। इस प्रकार पृथिवी पर प्रलय मच जाएगी।

मानवीय राज्य का संतुलन भंग हो जाने पर प्राकृतिक संतुलन भी संतुलित नहीं रह सकता। जड़ व चेतन दोनों जगत् परस्पर गुंथे हुए हैं। जब मानवीय संतुलन भंग होगा उसका प्रभाव प्रकृति पर भी पड़ेगा। प्रकृति राज्य में ग्रह-उपग्रह परस्पर टकरायेंगे तब पूर्ण प्रलय हो जाएगी अथवा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु आदि महाभूत सब अपने कारणों में मिलकर अणुमात्र रह जायेंगे। कहीं सूर्य के निकट आने से वनदाह से आग लग जाएगी, कहीं बर्फ पिघल कर बाढ़ आ जाएगी, कहीं तुफान उठेगें, कहीं सर्दी का प्रकोप होने से पृथिवी खण्ड-खण्ड हो जाएगी। कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि कहीं दुष्काल, तथा कहीं जलवायु खराब होने से महामारी फैलेगी। कहीं भूकम्प आयेगें, इस प्रकार पृथिवी रसातल में धसक जाएगी।

आज हम देख रहे हैं कि कभी अतिवृष्टि होती है, तो कभी अनावृष्टि तथा कभी असमय-वृष्टि। कहीं अकाल पड़ रहा है तो

कहीं भूकम्प। सूर्य पृथिवी के निकट आता जा रहा है, यही तो है आंशिक प्राकृतिक प्रलय का रूप। यद्यपि इस प्राकृतिक प्रलय में काल चक्र प्रधान है, परन्तु मानव के हृदय में स्थित धर्म व अधर्म भी कारण अवश्य हैं जबकि मानवीय प्रलय तो साक्षात अधर्म का परिणाम है ही। यदि इस प्रकृतिक प्रकोप से अपनी रक्षा करनी है, यदि सुख व आनन्द से जीना है, तो प्राकृतिक प्रलय का भी कारण तथा मानवीय प्रलय का मूल अधर्म को त्यागो और धर्म को अपनाओ विलासिता को हटाकर धर्म का प्रचार करो। वह धर्म नारियों व बच्चों से प्रारम्भ करो। तभी जीवन का सार सुख शांति प्राप्त कर सकोगे।

---

२ धर्म की आवश्यकता

आज के इस भौतिक युग में सर्वत्र त्राही-त्राही मची है। क्या बच्चा, क्या युवा और क्या बूढ़ा सभी धर्म से अनभिज्ञ हाय पैसा हाय धन की तृष्णा रूप ज्वाला में भस्म हुए जा रहे हैं, परन्तु क्या कभी उन्होंने विचारा है कि अधिकाधिक धन प्राप्त कर लेने पर भी, अधिकाधिक सुन्दर वस्त्र, महल तथा स्वादिष्ट भोजन आदि ऐश्वर्य मिल जाने पर भी जीवन अशान्त क्यों बना हुआ है, भारी क्यों बना हुआ है। जीवन खोखला बना हुआ है, चिन्ताओं का आवास बना हुआ है, दुखपूर्ण व मृत्यु का स्थान बना हुआ है, जीवन में से आनन्द विलुप्त हो चुका है, जीवन पराधीन हो चुका है। मनुष्य जीवित न रहकर मृत्यु का आलिंगन करना श्रेयस्कर समझता है। मनुष्य ही नहीं क्या समाज, क्या राष्ट्र सभी तो इन समस्याओं के शिकार बने हुए हैं।

हम बढ़ती हुई जीवन की इस अशान्ति से निश्चित बैठे हों ऐसी बात नहीं है, हमारे देशवासी इसका कोई प्रतिकार न कर रहे हों सो भी बात नहीं है। हमारी सरकार या हमारे नेता इसकी तरफ आँख मूंदे बैठे हों यह बात भी नहीं है। आखिर फिर कारण क्या है इस अशान्ति और व्याकुलता का ?

हमने सोचा कि जीवन की इच्छाओं रूपी मांगों की पूर्ति कर देने पर हमें कुछ सन्तोष व शान्ति मिलेगी, इसके दे डाला इसको धन, वस्त्र, महल, बगीचे; परन्तु फल निकला विपरीत। सन्तान वृद्धि रोकने के लिये फैमिली प्लैनिंग बनाकर कृत्रिम उपाय अपनाने से

परिणाम हुआ व्यभिचार वृद्धि । नारियों की आधुनिक शिक्षा का फल हुआ विलासिता। कानून बनाने का परिणाम मिला घूस व ब्लैक-मार्किट। अन्न समस्या को हल करने को जंगल काटकर वर्ष में तीन बार खेती करने का परिणाम हुआ वर्षा का अभाव तथा अन्न में शक्ति की कमी।

अब प्रश्न यह होता है कि बढ़ती हुई समस्याओं का हल कैसे हो ? इसका कारण क्या है ? कमी किस दिशा में है ? भो भैय्या ! न समस्या है सन्तान वृद्धि की, न घूस की, न ब्लैक मार्केट की तथा न अन्न की। समस्या है जीवन में धर्म के अभाव की हृदय बदल देने की आवश्यकता है। आवश्यकता है अध्यात्मिक धन की, आन्तरिक विलास की, हृदय के सन्तोष की। हमारे पूर्वजों के जीवन में यही बल था, यही गौरव था। भौतिक धन के आधार पर नहीं अपितु इस आध्यात्मिक धन के आधार पर यह देश सोने की चिड़िया कहलाता था, और पूर्ण सुखी था। आज हमारा भौतिक धन तो विदेशियों ने छीन ही लिया, साथ ही आध्यात्मिक धन भी छीन लिया। इसी से हम हृदय से उनके दास हो चुके हैं। हम नाम मात्र के भारतवासी उनकी दासता के पंजे में पड़ अपने बुद्धिधन को भी उनके मोहनकारी पारितोषिकों से आकर्षित हुए स्वयं प्रेम-पूर्वक समर्पित कर रहे हैं। उनके चरणों में जिस धन ने सन् १९६५ में पाकिस्तान व हिन्दुस्तान में डा० भावे द्वारा अमेरिका के पेटन टैंक तोड़कर अपना बिछुड़ा रूप दिखाया था। यदि यही दौर चलता रहा तो हमारी नाममात्र की स्वतन्त्रता आखिर कब तक सुरक्षित रह सकेगी, भगवान ही जाने। इसको सुरक्षित रखने के अर्थ आवश्यकता है-उसी परम धन की। यदि धर्म शब्द से चिढ़ हो तो कहिये आवश्यकता है-Morality की।

आज के स्कूल कालिज में पढ़े बच्चे उस धर्म के स्वरूप से अनभिज्ञ हंसी उड़ाते हैं धर्म व धर्मी की। उन बेचारों का दोष भी

क्या ? क्योंकि उनको सिखाया ही कब गया है उसका विशील स्वरूप। आजका प्रौढ वर्ग भी धर्म के वास्तविक स्वरूप से अतिदूर केवल खाने-पीने की शुद्धता व त्याग को ही धर्म मान बैठे हैं। विद्वद्वर्ग केवल तर्क-वितर्क व चर्चा को ही धर्म मानकर वाद-विवाद मान रहे हैं, जब कि ये सब चीज़ें वास्तव में धर्म नहीं हैं अपितु धर्म के साधन अवश्य हैं। जैसे-भौतिक विद्या प्राप्ति के लिये स्कूल व कालिज तथा पुस्तकें व वहां का सदाचार आदि सब विद्या प्राप्ति के साधन हैं परन्तु भौतिक विद्या वा विज्ञान नहीं।

अध्यात्म व धर्म कहते हैं-Morality को। देश को समृद्ध व स्वतन्त्र रखने के लिये प्रचार कीजिये स्कूल व कालिज में इसका। जिससे अंकुरित होगी कर्तव्य परायणता, विवेक, सत्यता, सन्तोष परदुखकातरता, सेवा परायणता, संतोष सादगी, विनय, क्षमा, मृदुता, सरलता, हृदय की पवित्रता, निःस्वार्थता, इन्द्रिय विजय तथा देश व मातृभक्ति। फिर विचार कीजिये क्या कोई समस्या रह सकेगी ? जीवन में सन्तोष व स्वार्थ त्याग होने से संचय की भावना समाप्त होगी; इन्द्रिय विजय व हृदय की पवित्रता से व्याभिचार समाप्त होकर स्वयमेव जन संख्या कम होगी; ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता, विवेक, सत्यता आदि गुणों से घूस व ब्लैक मार्केट का विनाश होगा।

इस प्रकार हम बाह्य से सादे रहकर भी हृदय से सुन्दर, बलवान व सुखी होंगे। यह प्रचार होना चाहिये बच्चों में क्योंकि वही समाज के सुदृढ़ कर्णधार होंगे, वही देश के नेता होंगे तथा वही संस्कृति के रक्षक होंगे। इसमें भी मुख्यतः नारियों में अधिक प्रचार की आवश्यकता है। नारी का हृदय बदल गया तो देश का बदल गया। नारी का उत्थान ही गृह का, समाज का, देश का व राष्ट्र का उत्थान है। नारी का पतन विश्व का पतन है। नारी देश व राष्ट्र की निर्माता है। इसलिये नारी को शिक्षा आवश्यक है परन्तु कौन से क्षेत्र की यह विषय विचारणीय है।

३. देश की निर्माता

भारत की नारी देश की माता है, देश का प्राण है, देश की पालनहारी है, पोषणहारी है तथा रक्षणहारी है। वह देश का गौरव है, निधि है। प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी विचारक इसमें एकमत हैं कि नारी सभ्यता व संस्कृति का मेरुदण्ड है। हमारे देश की कल्पना में उसको कुछ और ही विशेषता प्राप्त हुई है। भोग के बीच त्याग, तपस्या, समर्पण एवं अर्चना की प्रतिष्ठा ने उसे एक अद्भुत शक्ति व सभ्यता प्रदान की है।

यद्यपि बीच के युग में शताब्दियों तक स्त्री के प्रति हीन भावनायें रही हैं। उसका परिणाम भी भोगा गया है। समाज का वा देश का सर्वाङ्गीण पतन हुआ है। परन्तु धर्म में, हमारे श्रेष्ठ साहित्य में तथा इतिहास में नारी सर्वत्र पूज्या, परम आदरणीया और प्रेमास्पदा रही है। सर्वत्र उसके प्रति स्नेह तथा आदर करने के आदेश दिए गए हैं। महाभारत में कहा भी है :—

स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।
तदा चैतद् कुलं नास्ति यदा शोचन्ति जामयः।।
जामीशप्तानि गेहानि निकृत्तानीव कृत्यया।
नैव भान्ति न वर्धन्ते श्रिया हीनानि पार्थिवः।।

अर्थ—जहाँ स्त्रियों का आदर सत्कार होता है, वहाँ देवत लोग प्रसन्नता पूर्वक निवास करते हैं तथा जहाँ इनका अनादर होत

है वहां की सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। जब कुल की बहू-बेटियाँ दुःख मिलने के कारण शोकमग्न होती हैं तब उस कुल का नाश हो जाता है। वे खिन्न होकर जिन घरों को शाप दे देती हैं वे कृत्या के द्वारा नष्ट हुए के समान उजाड़ हो जाते हैं वे श्री हीन गृह न तो शोभा को पाते हैं और न इनकी वृद्धि होती है।

हम अपने इतिहास के पन्ने खोल कर देखें तो पता चलता है कि जब जब भी व्यक्तिगत परिवार में, समाज में वा देश में कुछ जागृति आई है तो नारी द्वारा आई है और यदि पतन हुआ है तो नारी के पतन से ही पतन हुआ है। किसी भी देश का उत्थान व पतन नारी के ऊपर निर्भर है। पुरुष व नारी गृहस्थ रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। इसी लिये दोनों में से एक भी बिगड़ जाये तो गाड़ी चल नहीं सकती। पुरुष गृहस्थ वा देश का राजा है तो नारी मन्त्री, पुरुष मस्तिष्क है तो नारी हृदय, पुरुष पताका है तो नारी लाज, पुरुष कमल है तो नारी सौरभ। पुरुष व नारी दोनों मिल कर इस सृष्टि की रचना करते हैं। फिर भी इसमें नारी का स्थान मुख्य है। क्योंकि नारी के भाव ही पुरुष रूप से उत्पन्न होते हैं। कहा है सबसे प्रथम गुरु माता है। सर्व प्रथम माता बच्चे के कान में जो मन्त्र फूंक देती है तथा गर्भावस्था में जैसा आचार विचार रखती है वैसा ही बच्चा बनता है। इस प्रकार के बहुत से दृष्टान्त हमारे पुराणों में उपलब्ध होते हैं। जैसे-अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह को तोड़ना सीखा था। सती मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को लोरियों द्वारा अध्यात्म के गहन उपदेश दिये, जिससे तीनों पुत्र आठ वर्ष की अवस्था में सन्यासी बन गए। तथा चौथे पुत्र को वीरता का उपदेश दिया तो वह वीर व तेजस्वी राजा बन बैठा।

अतः माता जैसी होगी वैसी सन्तान होगी। यदि माता अशिक्षित दुश्चरित्रा व अविचारशील है तो सन्तान भी वैसी होगी।

यदि माता सच्चरित्रा, शिक्षित, कर्तव्य परायणा, भक्तिमती, वात्सल्य व स्नेहमयी, तपस्वी, सती, साध्वी व एक निष्ठा वाली है तो सन्तान भी वैसी होगी, क्योंकि माता के चरित्र का भी बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। बच्चा मोमवत् हृदय वाला होता है वह जैसा अपने निकटवर्तियों को करता देखता है वैसा ही स्वयं करने लगता है जैसे कुम्हार का बच्चा मिट्टी से खेलना, राजा का बच्चा हुक्म चलाना व तीर आदि चलाने का खेल ही खेलता है। जबकि जड़ पदार्थोंपर भी वातावरण का प्रभाव पड़ता है फिर वह तो चेतन है जैसे-जल को गर्म व शीत जैसे स्थानपर रक्खो वैसा ही हो जाता है इसलिये माता की शिक्षा अत्यावश्यक है। वह शिक्षित होगी तभी योग्य सन्तान उत्पन्न होगी। योग्य सन्तान ही समाज व देशका रक्षण व उत्थान करने में सक्षम होगी।

यद्यपि अर्वाचीन युग में नारी की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। नारी को अन्धकार में न रख कर प्रकाश में लाया गया है, उसमें कुछ जागृति लाने का प्रयास किया गया है। उसको बन्धन में न रख कर स्वतन्त्रता दी गई है। उसके अधिकारों की रक्षा की गई है, परन्तु हम देख रहे हैं कि योग्य सन्तान की उत्पति का अभाव है। पारस्परिक झगड़े बढ़ते जा रहे हैं, इसका कारण क्या है ?

प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को शक्ति व योग्यता तथा अधिकारों के अनुसार उसके कार्य की सीमा भी निर्धारित की है। यद्यपि नारी का बौद्धिक विकास अत्यन्त आवश्यक है, यद्यपि उसकी शिक्षा अनिवार्य है परन्तु किस जाति की ?

आज की शिक्षा तथा स्वतन्त्रता ने देश में विलासिता का बोलबाला कर रखा है। देश की माता आज व्याभिचार के पंजों में पड़ी तड़प रही है। फैशन की दासी बनी देश का धन स्वयं अपने

हाथों लुटा रही है। वस्त्र, क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक आदि सामग्री से आविष्ट हुई अपने भावि के दारिद्र रूप दुख को भूल चुकी है। वह अपने लज्जा रूप आभूषण को त्याग चुकी है। आज उसे विदेशियों की हवा लगी है इसलिये पतिसेवा को आज वह नौकरी समझती है, इसी से वह पति से कोर्ट में लड़ने जाने को अपना गर्व समझती है। सच्च कहा है—

> अमन् सम्पूज्यते राजा अमन्सम्पूज्यते धनी।
> अमन् सम्पूज्यते विद्वान् स्त्री अमन्ता विनश्यति॥

पुरुष का क्षेत्र बाहर है नारी का क्षेत्र भीतरी। पुरुष धन उपार्जन करता है नारी उसका समुचित रूप से व्यय। अतः इनकी शिक्षा भी इसी क्षेत्र की तथा इसी ढग की होनी चाहिए। उसको शिक्षा दीजिये घरेलु गणित का, सतीत्व धर्म की, भक्ति-समर्पणभाव की, व सेवा भाव की, मधुरभाषित्वकी, पाकविधि, कला, दस्तकारी, सीना, कढाई, रोगों के इलाज की, धैर्यशीलता तथा क्षमाभाव की, आय के अनुसार व्यय की। सन्तान में उच्च संस्कार व वीरत्वभाव उत्पन्न करने की। जिससे वह गृहस्थ को स्वर्ग बना सके। उसको देश सम्बन्धी शिक्षा भी दी जानी चाहिये ताकि सन्तान को देशभक्त व वीर बना सके तथा झांसी की रानीवत् अवसर पड़ने पर आत्मरक्षा कर सके। इस प्रकार की शिक्षा कुटुम्ब को समाज तथा देश को सुदृढ बनाने में समर्थ हो सकेगी। अन्य प्रकार की शिक्षा या तो गृहस्थ में कुछ काम न आकर कालान्तर में विस्मृत हो जाती है अथवा सन्तान को योग्य बनाने की बजाय नारी नौकरी के पीछे दौड़ करती है।

रामचन्द्र जी ने सीता के प्रति कहा है—

> कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी धर्मेषु पत्नी क्षमया धरित्री।
> स्नेहेषु माता शयनेषु रम्भा रङ्गे सखी लक्ष्मण सा प्रिया मे॥

४. धर्म विज्ञान

धर्म यह शब्द रूढी में प्रवेश करके अपने महत्व को खो बैठा है। आज के वैज्ञानिक युग में इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। पाश्चात्य शिक्षा ने लोगों के हृदय को इससे विमुख कर दिया है। इसकी अवहेलना की क्या प्रतिक्रिया होगी इसका कौन विचार करे ? आज का विज्ञान जितना अधिक चमकदार बनता जा रहा है, उतना ही निराशा के गर्त में डूबा जा रहा है, यह कौन नही जानता। बाहर में अधिकाधिक विलासके साधन प्राप्त हो जाने पर भी यह अधिकाधिक भारी बनता जा रहा है, यह किसे महसूस नहीं होता। जूं जूं जीवन की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न व उपाय किया जाता है, तूं तूं अधिक अधिक उलझता जाता है, यह बात किसकी दृष्टि से ओझल है। क्या घरेलू जीवन, क्या समाज, और क्या राष्ट्र सब ही एक नाव के पथिक हैं। सभी की एकसी हालत है। व्यक्ति भी निराश है तथा समाज व राष्ट्र भी। व्यक्ति भी विलास से अन्धा हो गया है और समाज व राष्ट्र भी। व्यक्ति का जीवन भी भार बना हुआ है और समाज व राष्ट्र का भी। व्यक्ति का जीवन भी अनेकों उलझनों में फंसा हुआ है और समाज व राष्ट्र का भी। परन्तु क्या कभी किसी ने सोचा है कि आखिर इस सब का क्या कारण है ? उन्नति का उपाय करने पर भीअवनति क्यों हो रही है ? वास्तव में यह सब धर्म की अवहेलना की ही प्रतिक्रिया है, उस ही का फल है।

धर्म ईंट पत्थरों में नहीं, जीवन में अवतीर्ण होता है। काश !

कि एक बार उसे समझ लिया जाता। तब किसी को उसका तिरस्कार करने का साहस न होता। अंगूर हाथ न लगे तो खट्टे हैं, यह कोई न्याय नहीं। यदि कोई विज्ञान किसी की समझ में न आए तो वह विज्ञान ही झूठा है यह कोई न्याय नहीं है। धर्म स्वयं समझे नहीं और धर्म को व्यर्थ मानलें यह कोई न्याय नहीं है। विज्ञान विज्ञान ही रहता है, भले उसे कोई समझे या न समझे। सत्य सत्य ही रहता है, भले उसे एक भी व्यक्ति स्वीकार करने वाला न रह जाए। इसी प्रकार धर्म धर्म ही रहता है, भले ही उसकी कोई आवश्यकता न समझी जाये। धर्म सुख है, धर्म शांति है, धर्म जीवन का सार है, धर्म जीवन है। भैय्या किसी बात को न जान पाना इस बात का सबूत नहीं कि वह बात भी लोक में नहीं है। यदि वह है तो उसे जानने से काम चलेगा, उसका तिरस्कार करने से नहीं।

धर्म नाम जीवन का है। जीवन दो रूपों में देखा जाता है— एक बाह्य जीवन एक आन्तरिक जीवन। बाह्य जीवन शरीर का जीवन है और आन्तरिक जीवन मन का जीवन है। शारीरिक व मानसिक ये दोनों ही जीवन के प्रमुख अंग हैं, और इसीलिये दोनों ही आवश्यक हैं। इनमें से किसी एक को भी छोड़ दिया जाये तो जीवन संतुलित नहीं रह सकता है। यह दोनों ही जीवन की गाड़ी के दो पहिये हैं। इनमें से किसी एक को भी निकाल दिया जाए तो गाड़ी चल नहीं सकती। बताईये तो इसमें क्या झूठ है? भले ही आज की दृष्टि भौतिक होने के कारण उसमें शारीरिक जीवन का ही महत्व रह गया हो, परन्तु मानसिक जीवन की सत्ता से कौन इन्कार कर सकता है। भैया! शरीर भी है अवश्य पर सर्वस्व नहीं। इसके साथ साथ मन भी कुछ है।

जीवन को जानने का साधन विज्ञान है। क्योंकि जीवन के दो

रूप हैं, इसलिये विज्ञान के भी दो रूप होने चाहिए। शरीर बाह्य पदार्थ है जो इन नत्रादि इन्द्रियों से दिखाई दे जाता है। परन्तु मन अन्तरंग पदाथ है जो इन इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता, उस देखन के लिये अन्तरंग नेत्र की ही आवश्यकता है। मन मनके द्वारा ही देखा जा सकता है। शरीर भौतिक पदार्थ है इसलिये उसे जानने का साधन भी भौतिक विज्ञान है और मन आध्यात्मिक पदार्थ है, इस लिये उसको जानने का साधन भी आध्यात्मिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान व भौतिक पदार्थ दृष्ट होने के कारण सर्व स्वीकृत है। परन्तु आध्यात्मिक पदार्थ व आध्यात्मिक विज्ञान अदृष्ट होने के कारण संशयितसा प्रतीत होता है। परन्तु उसका अदृष्ट होना इस बात का प्रमाण नहीं कि वह है ही नहीं। वह तो है ही। उसको न जानने से उसका अभाव न हो सकेगा। जो जो वस्तु है वह वह सब जानी जा सकती हैं, इसलिये आइये और इसे जानिये। उसको न जानने से वह अन्धकार में पड़ा रहेगा और आपका जीवन लंगड़ा बना रहेगा। यदि जीवन का वास्तविक आनन्द उठाना है, यदि इसे संतुलित रूप से चलाना है तो भौतिक विज्ञान के साथ साथ उसे भी जानिये।

ठीक है कि आज विज्ञान उन्नति के शिखर पर है पर केवल भौतिक। ठीक है कि आज विज्ञान ने हमें अनेकों साधन दिये हैं पर केवल भौतिक। ठीक है कि आज का ज्ञान पहिले की अपेक्षा बहुत बढ़ा-चढ़ा है, पर केवल भौतिक। ठीक है कि आज के जीवन का स्तर बहुत ऊंचा है पर केवल भौतिक। ठीक है कि आज का जीवन अधिक चमकदार व सुखी सा प्रतीत होता है पर केवल भौतिक। मानसिक व आध्यात्मिक विज्ञान, ज्ञान, साधन, जीवन व सुख भौतिकता के भार से दबा हुआ अन्तिम श्वास ले रहा है। परन्तु सौभाग्य है कि अभी यह निष्प्राण नहीं हुआ है। इससे पहले कि वह अपने प्राण त्याग दे, उसकी रक्षा कीजिए, उस पर से भौतिकता का

भार उठाइये और इसे नव जीवन प्रदान कीजिए ।

भौतिक विज्ञान का क्षेत्र जड़जगत है और आध्यात्मिक विज्ञान का क्षेत्र चेतन है । जड़ जगत लोहे, सोने, ताम्बे व पत्थर आदि में देखा जाता है और चेतन जगत मन व हृदय में । भौतिक साधन नई नई मशीनें व वस्त्रादि विलास की सामग्रीयें हैं । और आध्यात्मिक साधन मानसिक विचारणायें हैं । भौतिक ज्ञान पुस्तकों में लिखा है । और आध्यात्मिक ज्ञान मन में लिखा है । भौतिक जीवन शरीर में दिखाई देता है और आध्यात्मिक जीवन मन में महसूस किया जाता है । भौतिक सुख भौतिक पदार्थों के भोग में है और आध्यात्मिक सुख मानसिक सन्तोष व शान्ति में है । भौतिकता को जगत जानता है, देखता है, भोगता है, तथा विश्वास करता है । परन्तु आध्यात्मिकता को न जानता है, न देखता है, न भोगता है । विश्वास करे तो कैसे करे । दोनों को साथ साथ रख कर देखें, तो संशय को अवकाश न रहे । जैसे भौतिकता प्रत्यक्ष है वैसे आध्यात्मिकता भी प्रत्यक्ष हो जाये । आध्यात्मिकता के अभाव में आज का विज्ञान लंगड़ा है, आज के साधन अधूरे हैं, आज का ज्ञान शुष्क है, आज का जीवन भार है । आज का सुख कल्पना है । क्योंकि बाह्य में सर्व साधन सम्पन्न व सुखी होकर भी यदि अन्तरंग में निराश व अशान्त बना रहे तो उसे सुख नहीं कह सकते ।

बस इसी में है धर्म का वास्तविक रहस्य । भौतिक साधनों के उपभोग को विलास कहते हैं और आध्यात्मिक साधनों के उपभोग को धर्म । अब बताईये धर्म किस प्रकार जीवन में प्रगट किया जा सकता है अतः यदि जीवन को वास्तव में सुखी बनाना है, तो इसे अवश्य जानिये व अपनाईये, क्योंकि बाह्य व अन्तरंग जीवनों का सामञ्जस्य ही वास्तविक सुख है । धर्म को पीछे छोड़कर भौतिकता आगे दौड़ी जा रही है, यही कारण है कि जीवन, समाज व राष्ट्र अधिकाधिक

उलझनों में फंसते जा रहे हैं। घूस व ब्लैक मार्केट जैसे अपराधों को रोकने के लिए नित्य नए नए कानून वन रहे हैं पर वे दिनों दिन बढ़ रहे हैं, क्यों ? क्योंकि कानून बनाने वाले स्वयं इस रोग से ग्रस्त हैं। काश ! कि अनेक कानून बनाने की बजाय एक ही कानून बना दिया जाता— आध्यात्मिकता को अपनाओ। अपराधों अन्यायों व अनर्थों का केन्द्र मन है शरीर नहीं। इसलिए इनका दमन मानसिक परिवर्तन से ही सम्भव है। शरीर को दण्डित करने से नहीं। मन स्वतन्त्र है और शरीर स्वतन्त्र। शरीर व शारीरिक जीवन का उत्थान शरीर व शारीरिक जीवन के साधनों से होता है। और मन व मानसिक जीवन का उत्थान मन व मानसिक जीवन के साधनों से ही सम्भव है। वह है आध्यात्मिकता या धर्म। अतः धर्म को सीखिये धर्म को अपनाईए और धर्म का प्रचार कीजिए। अब बताईए कि धम को कैसे व्यर्थ कहा जा सकता है।

भैय्या विज्ञान कभी व्यर्थ नहीं होता। वह सत्य है परम सत्य भले ही भौतिक विज्ञान हो कि आध्यात्मिक। अतः जितना परिश्रम भौतिकता के पीछे किया जा रहा है उतना ही आध्यात्मिकता के प्रति किया जाना चाहिए। जितना समय भौतिकता के पढ़ने व सीखने में लगाया जाता है उतना ही आध्यात्मिकता के पढ़ने व सीखने में लगाया जाना चाहिए। जिस रुची से भौतिकता का अभ्यास किया जाता है उसी रुची से आध्यात्मिकता का अभ्यास भी करना चाहिए। भौतिकता को पढ़ने के केन्द्र हैं स्कूल व कालिज और अध्यात्मिकता को पढ़ने के केन्द्र हैं मन्दिर व शास्त्र सभा। भौतिकता को करने के केन्द्र हैं दुकान व दफ्तर आदि और आध्यात्मिकता को करने के केन्द्र हैं मन्दिर व तीर्थ क्षेत्रादि। भौतिकता को भोगने का केन्द्र है शरीर और आध्यात्मिकता को भोगने का केन्द्र है मन। दोनों साथ-साथ पढ़िये, दोनों को साथ-साथ करिए, और दोनों को साथ-साथ भोगिये।

यही है भौतिकता व आध्यात्मिकता का सामञ्जस्य, जो कि वास्तविक सुख का सार है।

यदि सुखी होना चाहते हैं, यदि वास्तव में जीवन स्तर को ऊंचे उठाना चाहते हैं, यदि वास्तव में जीवन का रस लेना चाहते हैं, तो आध्यात्मिकता व धर्म को पीछे न छोड़िये, इसका तिरस्कार न कीजिये। उस धर्म का रूप क्या है, यह बात तो आगे की है। इस स्थल पर तो इतना स्वीकार कीजिये कि सुख व आनन्द का नाम धर्म है। प्रेम, निःस्वार्थता, कर्तव्य परायणता, दया, अहिंसा, सत्य क्षमा आदि सब इसी के डाली पत्ते हैं। जीवन के सन्तुलन के लिए जितना शरीर व शारीरिक व्यापार आवश्यक है उतना ही मन व मानसिक व्यापार भी आवश्यक है। या यों कह लीजिए कि जीवन को सुखी बनाने के लिए जितना धन आवश्यक है उतना ही धर्म भी आवश्यक है। शरीर के सामने मन और धन के सामने धर्म को बराबर बटाइये, आगे पीछे नहीं। धन ही सर्वस्व नहीं है, धर्म भी आवश्यक है।

५. धर्म का व्यापक रूप

अहो ! गुरुदेव की कृपा, अधर्म से अन्धे इस पामर को नेत्र प्रदान करके हित व अहित का निर्णय करने के योग्य बना दिया मुझे। धर्म जीवन का आवश्यक अंग है यह जान लेने के पश्चात अब यह जानने की जिज्ञासा होती है कि आखिर वह धर्म है क्या वस्तु, जिसका कि इतना गुणगान किया जा रहा है। कभी उसे सन्तोष के नाम से कहा जाता है, कभी सत्य व ईमानदारी के नाम से, कभी अहिंसा व दया के नाम से। इस प्रकार से तो वुद्धि उलझन में पड़ जाती है। अत: यहां धर्म का सैद्धान्तिक रूप सामने लाता हूँ।

धर्म का शाब्दिक अर्थ है स्वभाव। भगवान कुन्दकुन्द ने कहा भी है—'वत्थु सहावो धम्मो'। प्रत्येक वस्तु का स्वभाव उस उसका धर्म कहलाता है, जैसे जल का स्वभाव या धर्म शीतलता है और अग्नि का उष्णता। इसी प्रकार मेरा अर्थात प्राणी मात्र का भी कुछ न कुछ स्वभाव अवश्य है। वस मेरा स्वभाव ही मेरा धर्म है, यह समझना चाहिए।

परन्तु मेरा स्वभाव क्या है, यही वात सशय की कोटी में पड़ी है, तब धर्म का निर्णय कैसे हो ? कुछ व्यक्तियों का स्वभाव क्रोधी होता है और कुछ का शान्ति। कुछ का स्वाभाव कन्जूस होता है और कुछ का दानी। इस प्रकार ये सब विपरीत स्वभाव क्या धर्म कहे जा सकते हैं ? नहीं, भाई ऐसी वात नहींहै स्वभाव सदा एक रूप हुआ करता है विपरीत नहीं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव पृथक पृथक हो ऐसा नहीं हुआ करता। जिसे लोक में स्वभाव कहा जाता है वह वास्तव में स्वभाव नहीं है। अतः इससे पहले कि मैं धर्म का

व्यापक रूप दर्शाऊं यह निर्णय कर लेना चाहिए कि स्वभाव किसे कहते हैं?

स्वभाव का अर्थ समझने के लिए अपने पहिले वाले उदाहरण का विश्लेषण कीजिए। आप बिना सोचे समझे ही जल का स्वभाव शीतल क्यों बता देते हैं। जबकि कई स्थान पर जल उष्ण भी पाया जाता है? जल के सम्बन्ध में भी जरा पूर्वोक्त प्रकार ही कहकर दिखाईये कि किसी जल का स्वभाव शीतल होता है और किसी का उष्ण? क्यों, बोल क्यों रुक गया? यदि जल के स्वभाव में इस प्रकार के द्वैत को मन नहीं करता तो व्यक्ति के स्वभाव में ही द्वैत करने को क्यों मन करता है? इसका कारण केवल यही है कि जल का स्वभाव हाथों से प्रत्यक्ष हो जाता है, पर व्यक्ति का स्वभाव इन्द्रियों से जाना नहीं जाता।

स्वभाव की खोज इस प्रकार ऊपर से न हो सकेगी। स्वभाव उस शक्ति का नाम है, जो किसी बाह्य शक्ति के नीचे दबी बैठी रहती है, और कभी-कभी अवसर पाकर प्रगट हो जाती है। स्वभाव अकृत्रिम हुआ करता है। जिस बात में कृत्रिमता होती है उसे स्वभाव नहीं कहते। जल की उष्णता कृत्रिम है, उसकी अपनी नहीं, क्योंकि उसमें उष्णता वास्तव में होती नहीं बल्कि अग्नि आदि के द्वारा लाई जाती है। परन्तु उसकी शीतलता कृत्रिम नहीं, उसकी अपनी है, क्योंकि वह किन्हीं भी प्रयोगों द्वारा लाई नहीं जा सकती, कृत्रिमता अर्थात अग्नि आदि का संयोग हटा दीजिये तो वह शीतल स्वय हो जाएगा। इसी प्रकार उसके नीचे बहने के लिए किसी कृत्रिमता की आवश्यकता नहीं, पर ऊपर उठाने के लिए पम्प आदि की आवश्यकता है। अतः नीचे बहना ही उसका स्वभाव है ऊपर चढ़ना नहीं। इसी प्रकार व्यक्ति में क्रोध कृत्रिम है, क्योंकि दूसरे व्यक्ति के संयोग से उसमें उत्पन्न हो जाता है। परन्तु शान्ति कृत्रिम नहीं स्वाभाविक है,

क्योंकि उस व्यक्ति के दूर हट जाने पर वह स्वतः शान्त हो जाता है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना।

जड़ पदार्थ हो या चेतन उसका स्वभाव वही होता है, जिसमें कृत्रिमता न हो। या यों कह लीजिए बाहर के समस्त दोषों को दूर कर देने पर वस्तु जैसी कैसी भी रह जाए वही उसका स्वभाव है और इस प्रकार व्यक्ति का स्वभाव क्रोध नहीं शान्त है। अभिमान नहीं मृदुता है, मायाचारी नहीं सरलता है, लोभ नहीं सन्तोष है। क्योंकि क्रोध, मान, माया व लोभ ये चारों ही किन्हीं अन्य व्यक्तियों या धनादि के संयोग से उत्पन्न होते हैं। और शान्ति, मृदुता, सरलता व सन्तोष इनके दूर हट जाने पर स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें से क्रोध आदि कृत्रिम व संयोगी भावों का नाम विभाव है स्वभाव नहीं। भले ही उन्हें भी लोक में स्वभाव कह देते हों, परन्तु क्षमा आदि स्वतन्त्र भावों का नाम स्वभाव है। इनमें से स्वभावों का नाम धर्म व विभावों का नाम अधर्म है। आगे-आगे सर्वत्र ऐसा जानना।

सभी जलों का स्वभाव एक रूप ही है अर्थात शीतलता व नीचे बहना ही है, परन्तु विभाव सबका पृथक ही है-किसी जल का विभाव उष्ण है और किसी का ऊपर को बहना। इसी प्रकार सभी व्यक्तियों का स्वभाव एक रूप ही है, अथात शान्ति, क्षमा, सत्य आदिक ही है, परन्तु विभाव सबका पृथक-पृथक है-किसी का क्रोध है, तो किसी का मान इत्यादि। उष्ण होते हुए भी जल शीतल स्वभावी है। क्योंकि अब भी उसकी यह शक्ति उसमें है, भले ही प्रकट न हो। इसी प्रकार क्रोध करते हुए भी व्यक्ति क्षमा व शान्त स्वभावी है, क्योंकि अब भी उसकी यह शक्ति उसमें है, भले ही प्रगट न हो।

प्रकट में होना न होना स्वभाव का प्रमाण नहीं। अधिकतर व्यक्ति क्रोधी हैं, इस पर से यह नहीं कहा जा सकता कि क्रोध व्यक्ति का स्वभाव है। भले ही भूतल पर एक भी व्यक्ति क्षमावान

न रह जाए पर व्यक्ति का स्वभाव क्षमा ही रहेगा, क्रोध नहीं बन जाएगा। अतः प्रकट पर से स्वभाव का निर्णय नहीं किया जा सकता तर्क पर से किया जा सकता है। स्वभाव ही धर्म है।

उपरोक्त सर्व कथन पर से यह भलि भांति समझा जा सकता है कि व्यक्ति का धर्म क्रोधादि नहीं, बल्कि क्षमा आदि है। उनसे उलटे अधर्म है। उदाहरण के रूप में मानसिक पतन, स्वार्थ, कर्तव्य विमुखता, प्रमाद, द्वेष, चिन्ता, विलास, हिंसा, असत्य, बेईमानी, चोरी, घूस, ब्लैकमार्केट, कुशील व व्याभिचार, धन संग्रह, इन्द्रिय भोगों की तृष्णा, निराशा, क्रोध, मान, माया, लोभ, कञ्जूसी आदि सब अधर्म है, क्योंकि दूसरे पदार्थों से उत्पन्न होने के कारण ये विभाव हैं। इनसे विपरीत मानसिक उत्थान, निःस्वार्थ, कर्तव्य परायणता, स्फूर्ति, प्रेम, शान्ति, सादगी, अहिंसा, सत्य, ईमानदारी, अचौर्य, घूस न लेना, ब्लैकमार्केट न करना, ब्रह्मचर्य, आवश्यकता से अधिक धन संग्रह न करना, इन्द्रिय भोगों में तृष्णा या आसक्ति न करना, आशा, क्षमा, मृदुता, सरलता, सन्तोष, दान व त्याग आदि सब धर्म हैं, क्योंकि दूसरे पदार्थों के संयोग की इनमें कोई आवश्यकता नहीं। ये सब व्यक्ति के स्वभाव हैं। यदि किसी भी अन्य व्यक्ति या पदार्थ का संयोग या इच्छा न हो तो व्यक्ति अवश्य ऐसा ही रहता है।

इतना ही नहीं समाज या राष्ट्र में व्यापकर व्यक्तिगत ये ही अधर्म व धर्म व्यापक रूप धारण कर लिया करते हैं। जैसे व्यक्तिगत स्वार्थ का ही राष्ट्रीय रूप घूस व ब्लैकमार्केट है। व्यक्तिगत कर्तव्य विमुखता का राष्ट्रीय रूप है साधन विहीनता व परतन्त्रता, क्योंकि इस दुर्गुण के कारण अधिक खर्च करके भी देश का बहुत कम काम हो पाता है। व्यक्तिगत प्रमाद का राष्ट्रीय रूप ही देश की दुर्बलता है। द्वेष का राष्ट्रीय रूप ही फूट है, चिन्ता का राष्ट्रीय रूप

ही प्रजा की व्यंग्रता है। विलास का रूप ही खर्च या आर्थिक भार है, हिंसा का ही रूप भय है, असत्य व बेईमानी का रूप ही देश के व्यापार में हानि तथा न्यायशालाओं में अन्याय का पोषण है, चोरी का रूप ही विदेशी आक्रमण है, व्यभिचार का रूप ही बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या है, धन संचय का रूप पूंजीवाद व साम्राज्यवाद है, भोगों की तृष्णा का रूप ही यातायात व डाक-तार के साधनों का भार है, निराशा का रूप ही विद्रोह है, क्रोध का रूप ही युद्ध है, मान का रूप ही दूसरे देशों की बातें न मानकर मनमानी करना है, माया का रूप ही शीत युद्ध है, लोभ का रूप ही विस्तारवाद है, कन्जूसी का रूप ही सामञ्जस्य व मैत्री का अभाव है। ये सब समाज व राष्ट्र के अधर्म हैं। इसी प्रकार निःस्वार्थता आदि के व्यापक रूप है, घूस व ब्लैक मार्केट का अभाव, साधन सम्पन्नता व स्वतन्त्रता, बलवानपना, संगठन, निराकुलता, खर्च में कमी या आर्थिक बचत, निर्भयता, व्यापार में उन्नति, न्यायशालाओं में न्याय, विदेशों के साथ मैत्री, संतुलित जनसंख्या, साम्यवाद, यातायात की सुविधायें, विद्रोह, दमन, युद्ध न होना, अन्य देशों की सलाह से अपने देश का हित करना, हृदय की एकता, पंचशीलवाद, मैत्री इत्यादि। ये सब समाज व राष्ट्र के धर्म हैं।

धर्मों व अधर्मों की इतनी बड़ी लिस्ट को याद रखना व यथा-अवसर जीवन में उन्हें अपनाते रहना, यह तो बड़ी कठिन बात है। कठिन क्या असम्भव है, क्योंकि अवसर पड़ने पर विचारा नहीं जाया करता, जिस व्यक्ति की जैसी भी प्रकृति या स्वभाव होता है, उसके द्वारा वैसा ही काम स्वतः हो जाया करता है। धर्मी व्यक्ति के द्वारा धर्म और अधर्मी व्यक्ति के द्वारा सदा अधर्म हुआ करता है। यह भी सम्भव है कि किन्हीं बातों में तो धर्म का पालन हो जाए और किन्हीं बातों में अधर्म का, जैसे दान तो देता हो पर ब्लैकमार्केट करता हो।

और फिर धर्म और अधर्म इतने ही नामों में तो समाप्त नहीं हो जाता। पद-पद पर जीवन में धर्म या अधर्म का कार्य होता ही रहता है। कौन लिखे उन सबके पृथक-पृथक नाम? बाह्य क्रियाओं के नाम कदाचित सम्भव भी हो सकें परन्तु प्रतिक्षण मन में जो अच्छे या बुरे भाव आते रहते हैं उनका तो संज्ञाकरण भी नहीं किया जा सकता।

अतः धर्म की कोई सरल पहचान जाननी होगी। हमारे पास क्रिया करने के तीन साधन हैं-मन, वचन व काय। या तो हम मन से अच्छा या बुरा सोचकर धर्म या अधर्म किया करते हैं, या वचन से मीठा या कडुवा अथवा सत्य व असत्य बोलकर धर्म व अधर्म किया करते हैं। अथवा काय से अहिंसा व हिंसा आदि करके धर्म व अधर्म आदि किया करते हैं। इनके अतिरिक्त चौथा साधन नहीं है। अतः कह सकते हैं, हमारे मन, वचन व काय के सर्व ही अच्छे कार्य धर्म हैं और बुरे कार्य अधर्म हैं।

अब प्रश्न यह होता है, कि अच्छे कार्य या बुरे कार्य हम किन को कहते हैं? सो इसकी बड़ी सरल पहिचान है, जो आपका स्वभाव स्वयं तुम्हें बता देगा। कोई भी काम करने से पहले यदि आप अपने अन्तःकरण से यह पूछ लें कि यदि यही कार्य कोई अन्य व्यक्ति आपके लिए करे तो आपको अच्छा लगेगा या बुरा? यदि आपका अन्तःकरण यह कहे कि अच्छा लगेगा तो समझ लीजिए कि यह काम अच्छा है, यदि अन्तःकरण कहे कि बुरा लगेगा तो समझ लीजिए कि यह काम बुरा है।

इस प्रकार अच्छे बुरे को समझकर काम करने को विवेक कहते हैं। विवेकपूर्वक किये गए सभी काम धर्म हैं और विवेकरहित किये गए सभी काम अधर्म हैं। इस विवेक का क्षेत्र बहुत व्यापक है।

चलने-फिरने के कार्य में, बोलने-चालने के कार्य में, भोजन करने के कार्य में, वस्तुओं को उठाने-धरने के कार्य में, मल-मूत्र आदि क्षेपण करने के कार्य में, कमाने-खाने व भोगने के कार्य में, तथा इसी प्रकार जीवन के सभी प्रकार के कार्यों में विवेक की कुछ न कुछ मांग है। कर्तव्य अकर्तव्य को पहचानना ही विवेक कहलाता है।

इस विवेक के अन्तर्गत धर्म ग्रन्थों में बताये गये धर्म के सर्व ही अंग यथास्थान ठीक-ठीक फिट बैठते हैं। उनमें से किसी भी अंग को व्यर्थ या रूढ़ि नहीं बताया जा सकता, भले ही वह अंग देवपूजा सम्बन्धी हो या गुरु उपासना सम्बन्धी, स्वाध्याय सम्बन्धी हो या उपदेश सम्बन्धी, भोजन शुद्धि सम्बन्धी हो या वस्त्र शुद्धि सम्बन्धी, उपवास सम्बन्धी हो या दान सम्बन्धी, स्कूल कालिज खुलवाने सम्बन्धी हो या मन्दिर निर्माण कराने सम्बन्धी। यदि कोई भी आगम कथित अंग व्यर्थ या रूढ़िवत् भासता है तो उसमें उस आगम का दोष नहीं, बल्कि व्यक्ति के अपने विवेक का दोष है। अपने स्वार्थ या रुचि विशेष के कारण उसके विवेक का क्षेत्र बहुत संकुचित है। यदि धर्म का रूप व्यापक जानना है तो जीवन के हर अंग में विवेक करना योग्य है, तथा उपरोक्त सिद्धान्त को लागू करके अन्तःकरण से पूछना योग्य है। सभी अंगों को पृथक-पृथक बताया जाना तो कठिन है। हां, कुछ एक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध अंगों को आगे के प्रकरणों में क्रमपूर्वक बताने का प्रयत्न करूंगी। वैज्ञानिक रीति से उनका निर्णय हो जाने पर, विश्वास है कि आपको वे अंग व्यर्थ व रूढ़िवत् प्रतीत न होंगे। आगम द्वारा बताये गए प्रत्येक नियम के पीछे कोई न कोई विज्ञान है। व्यर्थ जानकर धर्म के अंगों की अवहेलना करने की बजाय उनके पीछे छिपे हुए विज्ञान को जानना चाहिए।

प्रकरण वश यहाँ कुछ धर्म के प्रसिद्ध अंगों का संक्षिप्त परिचय दे देना योग्य है। आगम में पांच पाप प्रसिद्ध हैं-हिंसा, झूठ, चोरी,

कुशील व परिग्रह। हिंसा कहते हैं किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से मारना या सताना। झूठ और चोरी सर्व परिचित हैं। कुशील कहते हैं व्यभिचार को और परिग्रह कहते हैं धनसंचय को। क्योंकि ये पांचों ही बातें अन्तःकरण को बुरी लगती हैं इसलिये पाप हैं, अधर्म हैं, और यह सर्व सम्मत भी हैं। क्योंकि अधर्म है, इसलिए करने योग्य नहीं, बल्कि त्यागने योग्य हैं। इन पांचों के त्याग का नाम पांच व्रत हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व परिग्रह परिमाण या परिग्रह त्याग। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये पांचों व्रत धर्म के अंग हैं, कर्तव्य हैं, क्योंकि ये अन्तःकरण को अच्छे लगते हैं।

पांच व्रतो के पश्चात पंच समिति का नम्बर आता है-ईर्या-समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, व उत्सर्ग समिति। ईर्या समिति का अर्थ है देख भालकर चलना ताकि पांव के नीचे चींटी आदि न कुचली जाए। भाषा समिति का अर्थ है सोच-विचारकर बोलना, ताकि सत्य व मीठा ही वचन बोला जाए। एषणा समिति का अर्थ है शुद्ध भोजन करना, ताकि मन व शरीर दोनों के स्वास्थ्य को हानि न हो। आदान निक्षेपण समिति का अर्थ है वस्तुओं को देख भालकर उठाना व धरना ताकि उनके नीचे दबकर छोटे-छोटे जन्तुओं का प्राण पीडन न हो। उत्सर्ग समिति का अर्थ है मल-मूत्र को योग्य स्थान पर ही छोड़ना, जहां कहीं नहीं, ताकि बिमारी आदि न फैले। ये पांचों ही बातें सबके अन्तःकरण को प्रिय हैं, अतः धर्म हैं, कर्तव्य हैं।

पांच व्रत व पांच समिति के बाद आती हैं-तीनगुप्ति—मनोगुप्ति वचनगुप्ति व कायगुप्ति। इन तीनों का अर्थ है मन, वचन व काय पर नियन्त्रण रखना, ताकि यह तीनों अन्तःकरण की वैषयिक मांग के पीछे न चलें। इनके पश्चात आता है पंचेन्द्रिय जय अर्थात् शरीर, जिव्हा, नासिका, नेत्र, व कान। इन पांचों को निरंकुश न

होने देना। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इन्द्रियों के दास न होना या विलासता में न फंसना। इसका अर्थ है यह कि तन ढांपने के लिए ही वस्त्र पहनना तन सजाने के लिए नहीं, पेट भरने के लिए ही भोजन करना स्वाद लेने के लिए नहीं, इतर, पाउडर व क्रीम आदि विलासिता के सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग न करना, खोटे संस्कारों को उत्पन्न करने वाले सिनेमा आदिक या किन्हीं की बहू-बेटियों को खोटी दृष्टि से न देखना, खोटे संस्कार उत्पन्न करने वाले फिल्मी गाने न सुनना। ये तीन-गुप्ति व पंचेन्द्रिय--जय भी अन्तष्करण को स्वीकार होने के कारण धर्म हैं, कर्तव्य हैं। पांच-व्रत, पाँच-समिति, तीन-गुप्ति, पंचेन्द्रिय-जय इन सबका एक नाम संयम है।

इनके अतिरिक्त विनय भाव को जागृत करने के लिये देवपूजा व गुरु उपासना, धर्म व उसके अंगों का विस्तार तथा कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान करने के लिये धर्म ग्रन्थों की स्वाध्याय, मानसिक बल बढ़ाने के लिये यथाशक्ति कुछ तप तथा उदारता की वृद्धि के लिये दान, ये पांच भी अन्तष्करण को स्वीकार होने के कारण धर्म हैं, कर्तव्य हैं।

इस प्रकार देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये छः बातें एक सद्गृहस्थ के कर्तव्य हैं। आगम भाषा में इन्हीं बातों को सुन कर कुछ अविश्वास सा होने लगता है और पूर्व कथित सार्वजनिक भाषा में इन्हीं बातों को सुनकर ये सभी प्रिय मालुम होती हैं। भया ! भाषा के कारण इन पर अविश्वास मत करो। विज्ञान तो विज्ञान है, भले किसी भाषा में कहा जाये। धर्म गुरुओं ने ये सब व्रतादि के नियम यों ही नहीं बता दिये, बहुत सोच विचार कर बताये हैं। इन सभी में एक सद्गृहस्थ का कल्याण छिपा है। पहले की कथन शैली किसी और प्रकार की थी और आज किसी और प्रकार की है। लोगों को समझाने के लिये

उन्हीं की भाषा का प्रयोग करना चाहिये, इस न्याय के अनुसार में आपकी ही सरल भाषा में इन्हीं सब नियमों का कुछ संक्षिप्त सा वैज्ञानिक रूप क्रम-पूर्वक दर्शा कर यह बताने का प्रयत्न करूंगी कि इन नियमों का जीवन में कितना बड़ा स्थान है। आप इस सबको श्रद्धा व रुचि सहित पढ़ोगे और स्वयं अपने अन्तःकरण से पूछ पूछ कर इनकी परीक्षा करोगे तो अवश्य ही इनकी सत्यता व महत्ता का विश्वास आपको हो जायेगा। फिर यथाशक्ति इन्हें अपने जीवन में अपनाने का प्रयत्न करोगे तो अवश्य आपका कल्याण होगा अर्थात् अवश्य आपका जीवन कुछ शान्ति का अनुभव करेगा।

उपरोक्त कर्तव्य के अनुसार जीवन में किये जाने वाले जो कुछ भी मन, वचन व काय के कार्य हैं, उन्हें ही कर्म कहते हैं। अच्छे कर्म का फल सुख और बुरे कर्म का फल दुख होता है। जैसे कि किसी पर क्रोध करते समय भले ही आपको कुछ पता न चले परन्तु पीछे से तो हृदय में व्यथा होती है। इसी प्रकार प्रेम में भीग कर किसी का उपकार करते हुए तथा उसके पीछे भी आपको सुख होता ही है। वर्तमान में किये गए किसी भी कर्म का फल वर्तमान में भी मिलता है भविष्यत में भी। वर्तमान में कर्म का फल कैसे होता है इस बात का दृष्टान्त ऊपर दे दिया गया। अब भविष्यत में फल देने का दृष्टान्त भी सुनिये। किसी व्यक्ति के साथ भलाई या बुराई कर देने पर भले ही वह व्यक्ति तुरन्त उसका बदला आपको न चुका सके परन्तु भविष्यत में अवसर मिलने पर वह अवश्य बदला चुकाता है। आपसे बुराई पाने वाला अवसर मिलते ही आपको कोई न कोई नुकसान पहुँचाता है और आप से भलाई पाने वाला अवसर मिलते ही आपकी सहायता आदि करता है। अतः कर्तव्य अकर्तव्य के पश्चात कर्म व कर्मफल का भी धर्म विज्ञान के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। (विशेष देखें 'मूर्ति पूजा रहस्य' नामक पुस्तक में कर्म सिद्धान्त)

इस प्रकार धर्म का सम्बन्ध तीनों बातों से है—पदार्थ के स्वभाव से, कर्तव्य अकर्तव्य से तथा कर्म व कर्मफल से। यह तीनों ही विषय पृथक् पृथक् विज्ञान है और तीनों का ही पृथक् पृथक् विस्तार है। जिस प्रकार लौकिक विज्ञान को पढ़ने के लिए आपको भिन्न विषयों की अनेक पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं, उसी प्रकार धर्म विज्ञान पढ़ने के लिए भी उपरोक्त विषयों सम्बन्धी अनेक पृथक् पृथक् पुस्तकें पढ़नी चाहियें।

भजन

धर्म को छोड़ मत भाई तुम्हें मुक्ति को पाना है।
ये दो दिन की है जिन्दगानी यहाँ से सबको जाना है।।

फंसा है क्यों अरे मानव यहां कुछ भी न अपना है।
न कोई है तेरा मेरा यहां सब कुछ हो सपना है।
अरे तू चेतले मानव ये जग झूठा ठिकाना है।
मुक्ति को पाना है।।१।।

ं आकुलता हटा मन से तू तज दे मोह ममता को।
सदा सच बोल संयमधार बसाले उरमें समता को।
हटादे पाप का पर्दा तुझे शिवपुर को जाना है।
तुम्हें मुक्ति को पाना है।२।।

दिये उपदेश जिनवर न तू उनको ध्यान में धरले।
ये मौका फिर न आयेगा ये नरतन सार्थक करले।
तू आजा वीर के चरणों में यही सच्चा ठिकाना है
तुम्हें मुक्ति को पाना है।।३।।